डॉ. गोपाल राय और हिन्दी कथालोचना

संपादक

पूनम सिन्हा

डॉ० गोपाल राय और हिन्दी कथालोचना

संपादक
पूनम सिन्हा

सह-संपादक
डॉ० त्रिविक्रम नारायण सिंह

प्रतिभा प्रकाशन

ISBN : 978-81-941225-8-6

प्रथम संस्करण

2020

सर्वाधिकार ©

संपादकाधीन

प्रकाशक

प्रतिभा प्रकाशन

केदारनाथ रोड (बिजली ऑफिस के पास)

मुजफ्फरपुर-842001

फोन : 9955658474, 9572980709

अक्षर-संयोजन

अमित कुमार कर्ण

आवरण

शशिकांत सिंह

मुद्रक

जी० एस० ऑफसेट, दिल्ली

मूल्य

350.00 (तीन सौ पचास रुपये)

Dr. Gopal Rai Aur Hindi Kathalochana

Rs. 350.00

अनुक्रम

संपादकीय		–7
धरोहर :		
भाषा चिन्तन : शुद्ध भाषा की खोज	**गोपाल राय**	–13
स्मृति-शेष बंधुवर	**निर्मला जैन**	–22
बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी: डॉ० गोपाल राय	**हरदयाल**	–27
समावेशी दृष्टि से लिखा हिन्दी उपन्यास का इतिहास	**मैनेजर पाण्डेय**	–34
विद्धांग–बद्ध-कोदण्ड-मुष्टि–खर रुधिर-स्राव	**सत्यकाम**	–41
उपन्यास की संरचना : संदर्भ-प्रेमचंद के उपन्यासों की यथार्थवादी संरचना	**डॉ. पूनम सिन्हा**	–54
हिन्दी कहानी का इतिहास-2 साहित्य भी इतिहास भी	**डॉ. पूनम सिन्हा**	–65
इतिहासकार गोपाल राय	**अमिता पाण्डेय**	–71
आलेख :		
कथा-आलोचना की सैद्धांतिकी और डॉ० गोपाल राय	**डॉ. रेवती रमण**	–77
डॉ० गोपाल राय की कथालोचना	**डॉ. चंद्रभानु प्रसाद सिंह**	–81
नलिनविलोचन शर्मा एवं गोपाल राय की साहित्यदृष्टि : संदर्भ-गोदान	**डॉ. सुधा बाला**	–85
हिन्दी उपन्यासालोचन के हिमालय : डॉ० गोपाल राय	**डॉ. जंगबहादुर पाण्डेय**	–93
गोपाल राय की सृजनात्मकता: कथालोचना की विस्तृत भूमि	**डॉ. संजय पंकज**	–98
हिन्दी कहानी का इतिहास लेखन और डॉ० गोपाल राय	**डॉ. त्रिविक्रम ना.सिंह**	–102
उपन्यास की संरचना और डॉ० गोपाल राय	**डॉ. रामेश्वर द्विवेदी**	–109

गोपाल राय : एक दृष्टि डॉ. राजीव कुमार झा–116
शेखर : एक जीवनी और गोपाल राय की विवेचना डॉ. धीरेन्द्र प्रसाद राय–121
मैला आँचल की आंचलिकता:
डॉ० गोपाल राय डॉ. कल्याण कुमार झा –133
उपन्यास आलोचना की परंपरा और गोपाल राय डॉ. संत साह –137
मैला आँचल में लोकविश्वास के तत्त्वों की
पहचान : डॉ० गोपाल राय डॉ. साक्षी शालिनी –140
साहित्येतिहास-लेखन की कठिनाइयाँ और
डॉ० गोपाल राय डॉ. राकेश रंजन –144
डॉ० गोपाल राय की दृष्टि में मैला आँचल में
स्वातंत्र्योत्तर राजनीति की प्रकृति डॉ. सुशांत कुमार –153
डॉ०. गोपाल राय की औपन्यासिक आलोचना
का अनुशीलन डॉ. संध्या पाण्डेय –157
आंचलिक उपन्यास की अवधारणा और गोपाल राय डॉ. चित्तरंजन कुमार –163
उपन्यास शिल्प और गोपाल राय का विवेचन सोनल –170
गोदान की आलोचना प्रक्रिया और कथालोचक
गोपाल राय अखिलेश कुमार –176
हिन्दी उपन्यासालोचन और डॉ० गोपाल राय डॉ. माधव कुमार –180
कथा आलोचक डॉ० गोपाल राय डॉ. पल्लवी –185
डॉ० गोपाल राय : समीक्षा और साहित्याब्दकोश समीक्षा सुरभि –188
कथालोचक डॉ० गोपाल राय की दृष्टि में
विष्णु प्रभाकर की कहानियाँ डॉ. प्रीति कुमारी –200
डॉ० गोपाल राय की दृष्टि में मैला आँचल की
भाषागत विशिष्टता डॉ. इंदिरा कुमारी –205
हिन्दी उपन्यास का इतिहास और गोपाल राय पल्लवी कुमारी –211
उपन्यास की पहचान मैला आँचल के संबंध
में गोपाल राय की विवेचना डॉ. अंशु कुमारी –216
हिन्दी कहानी का इतिहास और डॉ० गोपाल राय विकास कुमार –220

संस्मरण :

मैं और गोपाल राय उषाकिरण खान –225
इतिहासकार-कोशकार डॉ० गोपाल राय :

एक संक्षिप्त परिचय **भगवानदास मोरवाल** –227
सुखद स्मृतियों में गोपाल राय **डॉ. श्रीनारायण प्रसाद सिंह**–232

साक्षात्कार :

डॉ० गोपाल राय का साक्षात्कार
(समीक्षा से साभार) **डॉ. पूनम सिन्हा** –236
प्रो. सत्यकाम का साक्षात्कार : **डॉ. पूनम सिन्हा** –243
डॉ० खगेन्द्र ठाकुर का साक्षात्कार : संदर्भ
डॉ० गोपाल राय **डॉ. सुनीता गुप्ता** –258
डॉ० रामवचन राय का साक्षात्कार : संदर्भ
डॉ० गोपाल राय **डॉ. पूनम सिन्हा** –263
डॉ. माधव कुमार

अरुणकमल का साक्षात्कार : संदर्भ
डॉ० गोपाल राय **विनीता कुमारी** –268
प्रतिवेदन –271

उपन्यास की संरचना : संदर्भ-प्रेमचन्द के उपन्यासों की यथार्थवादी संरचना

–डॉ० पूनम सिन्हा

'उपन्यास का 'रूप' चाहे जितना भी अमूर्त और 'पाठ-सापेक्ष' हो, वह होता जरूर है। उसकी संरचना को समझना आलोचक के लिए चुनौती अवश्य है, पर वह सर्वथा पकड़ के बाहर है ऐसा नहीं कहा जा सकता। अंग्रेजी और यूरोप की अन्य भाषाओं में इसके प्रयास हुए हैं और इस विषय पर अनेक पुस्तकें उपलब्ध हैं। पर उन आलोचकों ने स्वभावतः अपनी भाषाओं के उपन्यासों को ही अपने विवेचन का आधार बनाया है। यहाँ तक कि भारतीय साहित्य में उपलब्ध कथा-रूपों की ओर भी उनकी दृष्टि नहीं गयी है। इस कारण उनके विवेचन में एक अधूरापन भी दिखायी पड़ता है। हिन्दी आलोचना भी उपन्यास की ओर विगत कुछ दशकों से ही उन्मुख हुई है। पर आलोचकों की दृष्टि जितनी उसके कथ्य पर रही है, उतनी उसकी संरचना पर नहीं। ....उपन्यास को ध्यान में रखें तो कथ्य, विजन, संवेदना, अनुभव, विचार, कथा, पात्र, परिवेश, भाषा आदि इसके प्रमुख उपादान हैं। इन्हीं से उपन्यास बनता है। इन्हीं का संयोजन संरचना है। उपन्यास किस प्रकार 'बनता' है और पाठक की चेतना में वह किस प्रकार 'रूप' ग्रहण करता है, इस किताब में इसी की तलाश हमारा लक्ष्य है।'

गोपाल राय ने अपनी पुस्तक 'उपन्यास की संरचना' के प्रारंभ में ही इस पुस्तक के लेखन के उद्देश्य को स्पष्ट किया है। इस पुस्तक के लेखन के पूर्व वे 'उपन्यास का शिल्प' (1983) और 'हिन्दी उपन्यास का इतिहास' (2002) लिख चुके थे। 'उपन्यास की पहचान' शृंखला के अंतर्गत 'शेखर : एक जीवनी' (1975), 'गोदान : नया परिप्रेक्ष्य' (1982), 'रंगभूमि : पुनर्मूल्यांकन' (1983), 'मैला आँचल' (2000), 'दिव्या' (2001) आदि उपन्यास केन्द्रित आलोचना की पुस्तकें लिख चुके थे। हिन्दी उपन्यास के

इतिहास लेखन एवं उपन्यास के सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक आलोचना के क्षेत्र में इन्होंने प्रचुर एवं महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। ये उपन्यास विधा के प्रामाणिक एवं विशेषज्ञ आलोचक माने जाते हैं। उनकी पुस्तक 'उपन्यास की संरचना' उनकी इस विशेषज्ञता एवं दक्षता का परिचायक है। यह पुस्तक उपन्यास की सैद्धांतिक आलोचना का उत्कृष्ट उदाहरण है, किन्तु इसमें सिद्धांतों को विभिन्न पाश्चात्य एवं हिन्दी उपन्यासों के उदाहरण एवं विवेचन के माध्यम से स्पष्ट एवं संपुष्ट किया गया है। अतः यह व्यावहारिक आलोचना का भी उत्तम उदाहरण है। उपन्यासों के संरचनात्मक अवयवों की पड़ताल करते हुए गोपाल राय ने जिन दो दर्जन उपन्यासों की विशद व्याख्या की है, उनमें प्रत्येक उपन्यास किसी न किसी संरचना-प्रविधि का प्रतिनिधित्व करता है। 'उपन्यास की संरचना' के प्रारम्भ में आदि मानव से उपन्यास तक की कथा-यात्रा के क्रम में कथा के 'कहन' से 'गढ़न' तक के विकास का रोचक वर्णन है। इसी क्रम में पौराणिक आख्यानों की परम्परा को भी खंगाला गया है।

आज भी उपन्यास की भाववादी एवं विधेयवादी आलोचना की ही प्रधानता है। डॉ० राय ने उपन्यासों की आंतरिक संरचनात्मक जटिलताओं का उद्भेदन करते हुए वस्तु एवं रूप दोनों को महत्त्वपूर्ण माना है। साथ ही, उपन्यास की संरचना में अंग्रेजी मॉडल के साथ संस्कृत मॉडल को भी प्रधान माना है। साहित्य चिन्तन में संतुलन के लिए उन्होंने अपनी निजी परम्परा तथा प्रवृत्ति की ओर ध्यानाकर्षित किया है।

डॉ० राय ने यूरोपीय एवं हिन्दी के महत्त्वपूर्ण उपन्यासों के संरचनागत अवयवों की पड़ताल करते हुए स्पष्ट किया है कि किस्सागोई से आरम्भ होने वाले उपन्यासों में अधुनातन एवं वैज्ञानिक प्रविधियों की तलाश निरंतर जारी है और विगत शताब्दी के उत्तरार्द्ध में औपन्यासिक संरचना में कविता की सामग्री-अनेकार्थता, फैंटेसी, प्रतीक-बिम्ब, भाषिक इन्द्रजाल आदि का भी प्रचुर मात्रा में उपयोग होने लगा है। डॉ० राय ने उपन्यास की संरचना की प्रविधियों की अनंत संभावना की ओर इंगित किया है। उनका मानना है कि 'उपन्यास की संरचना' का इतिहास कथानक को तोड़ने का इतिहास रहा है।' समय के क्रमिक विकास के साथ उपन्यासों में भी अन्तर्वृत्तियों के विश्लेषण का प्राधान्य होता गया और उपन्यास की संरचना में अनुभूति के आत्मनिष्ठ रूप का विस्तार होने लगा। "किसी अरस्तू के 'सिर' पर नहीं रहने के कारण उपन्यास कला को 'परम स्वतंत्रता' रही, उसे

(उपन्यासकार) विज्ञान और साहित्य के बीच [illegible] की दीवार से [illegible] को आच्छादित नहीं करना पड़ा। अत: इस नीति रीति के [illegible] प्रणाली, नई नई कड़ियों और कल्पनाओं को आयाम तथा इनके [illegible] अनुशीलन करने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है।" (आलोचना, जनवरी 1956, पृ. 96)

ऐसा माना जाता है कि "संरचनावाद पाश्चात्य साहित्य जगत से हिन्दी में आया। यह 1960 के दशक के फ्रांस से विकसित होकर विश्लेषण एवं चिन्तन की वह पद्धति है जिसे विश्व स्तर पर अनेक साहित्य समीक्षकों, दार्शनिकों, मनोविज्ञान शास्त्रियों तथा [illegible] का उत्साहवर्द्धक समर्थन मिला। कृति विशेष की गहन चिन्तन व विश्लेषण से प्राप्त सिद्धांतों के आधार पर अंतत: साहित्य मात्र की रचना के मूल सिद्धांतों का अन्वेषण संरचनावाद का लक्ष्य है। इसके साथ ही संरचनावादी उन मानसिक क्रियाओं का अन्वेषण करना चाहता है, जो कृति विशेष को पढ़ते समय उसे समझने के प्रयत्न में पाठकों द्वारा निष्पादित होती है। इतना होने पर भी संरचनावाद के लिए रचना केवल शाब्दिक या भाषिक संरचना है। इसलिए रचनाकार के वैयक्तिक, भावात्मक अभिप्राय का विवेचन संरचनावाद के अंतर्गत नहीं आता।" (हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ० अमरनाथ, पृ. 346-347)

यहाँ ध्यातव्य है कि साहित्य में युग और काल के अनुसार सिद्धांतों के स्वरूप में भी परिवर्तन होता रहा है। 'उपन्यास की संरचना' पुस्तक से गुजरते हुए स्पष्ट होता है कि रचनाकार के वैयक्तिक एवं भावात्मक अभिप्राय का संबंध सूत्र उपन्यास की संरचना से जुड़ा हुआ है। 'उपन्यास की संरचना' में प्रेमचंद के उपन्यासों को जगह जगह उदाहृत किया गया है, किन्तु इसके चौथे खण्ड 'हिन्दी उपन्यास और यथार्थवादी संरचना' के अंतर्गत प्रेमचन्द के उपन्यासों एवं फणीश्वर नाथ रेणु के 'मैला आँचल' की संरचना पर विस्तार से विचार किया गया है। यहाँ प्रेमचंद के उपन्यासों पर विचार करना मेरा अभिप्रेत है।

'यथार्थवाद' शब्द दर्शन के क्षेत्र से साहित्य एवं कला के क्षेत्र में आया है। 'कला और साहित्य के क्षेत्र में 'यथार्थवाद' एक आंदोलन के रूप में 19वीं सदी में फ्रांस में उभरा। 1826 में मर्क्यू फ्रांस ने 'यथार्थवाद' की परिभाषा अपने निबंध में की। तदुपरांत 1855 में फ्रांस के प्रसिद्ध चित्रकार कूर्बे ने अपने चित्रों में यथातथ्य शैली का व्यवहार किया तथा अपनी चित्र प्रदर्शनी में प्रवेश द्वार पर 'यथार्थवाद' शब्द अंकित किया। चित्रकला में

यथार्थवाद के अभ्युदय के बाद 1857 में फ्रांसीसी उपन्यासकार फ्लोबेयर (Gaustave Flaubert) का प्रथम यथार्थवादी उपन्यास 'मदाम बावेरी' (Madame Bavary) प्रकाशित हुआ। यथार्थवादी विचारधारा के अभ्युदय की पृष्ठभूमि में दार्शनिक, सामाजिक, आर्थिक, वैज्ञानिक, मनोवैज्ञानिक आदि कई प्रकार के कारण रहे हैं।' (हिन्दी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली, डॉ० अमरनाथ, पृ. 285)

हिन्दी उपन्यास की यथार्थवादी संरचना पर विचार करते हुए गोपाल राय यथार्थवाद की इस यूरोपीय अवधारणा से सहमत हैं कि 'मनुष्य के जीवन में वह सब कुछ जिसे हम अपनी बोधेन्द्रियों, मन और बुद्धि द्वारा जानते हैं, यथार्थ की सीमा में आ जाता है।' वे कहते हैं कि 'इसलिए जब हम उपन्यास के कथा-संसार की संरचना पर विचार करने बैठते हैं, तो हमारी पहली माँग यह होती है कि वह हमारे इस 'यथार्थ बोध' या 'इन्द्रीय बोध' से कितना शासित है।' इस मान्यता के प्रतिष्ठापक दकार्त, लॉक एवं टॉम रीड नामक दार्शनिक माने गये हैं। दकार्त ने 'डिस्कोर्स आफ मैथड्स' तथा 'मेडिटेशन' नाम की पुस्तकों में कहा है कि ''सत्यान्वेषण' शुद्ध रूप से व्यक्तिगत साधना है।'' इन दार्शनिकों की तरह कथा साहित्य के पाश्चात्य आलोचक ईवान वाट ने भी कहा है कि 'सच्चे उपन्यासकार का प्रमुख कर्तव्य अपनी जीवन साधना से उपलब्ध व्यक्तिगत अनुभवों का सच्चा और ईमानदारीपूर्ण प्रभावोत्पादक विवरण देना है।' प्रेमचन्द के उपन्यासों की यथार्थवादी संरचना पर विमर्श के पूर्व यहाँ स्वयं प्रेमचंद के तद्विषयक विचारों को जानना आवश्यक है। प्रेमचंद ने लिखा है कि 'भविष्य में उपन्यास में कल्पना कम सत्य अधिक होगा, हमारे चरित्र कल्पित न होंगे, बल्कि व्यक्तियों के जीवन पर आधारित होंगे। भावी उपन्यास जीवन चरित्र होगा, चाहे किसी बड़े आदमी का या छोटे आदमी का। ....किसी किसान का चरित्र हो या किसी देशभक्त का या किसी बड़े आदमी का, पर उसका आधार यथार्थ होगा। तब यह काम उससे कठिन होगा जितना अब है, क्योंकि ऐसे बहुत कम लोग हैं, जिन्हें बहुत से मनुष्यों को भीतर से जानने का गौरव प्राप्त हो।' (कुछ विचार, पृ. 56)

ईवान वाट के मतानुसार 'पात्र और स्थान दिक्, काल, और देश की सीमाओं में परिच्छिन्न होकर ही विशिष्टता को प्राप्त होते हैं। उपन्यास में कलाकार की सफलता पात्रों और स्थानों को समुचित दिक्, काल और देश की सीमाओं में परिच्छिन्न करने में ही सन्निहित रहती है।' (साहित्य संदेश,

अंक-7-8, पृ. 214 से उद्धृत) गोपाल राय ने 'उपन्यास की संरचना' में दिक्, काल, स्थान, नाम, भाषा आदि के आधार पर उपन्यासों में निहित यथार्थ का विश्लेषण किया है। प्रेमचन्द के उपन्यास जहाँ जीवन के करीब हैं, वहाँ अधिक सप्राण हैं, जहाँ जीवन से दूर हैं वहाँ कमजोर हैं। गोपाल राय के अनुसार उपन्यास की यथार्थवादी संरचना को हिन्दी में प्रतिष्ठित करने का श्रेय प्रेमचंद को है। उन्होंने 'साहित्य', जुलाई, 1954 में प्रकाशित नलिन विलोचन शर्मा की संपादकीय टिप्पणी उद्धृत की है : 'मेरी दृष्टि में प्रेमचंद की जो देन है, वह साहित्यिक है, समाजशास्त्रीय या राजनीतिक नहीं। उनकी यह महत्त्वपूर्ण देन उपन्यास के स्थापत्य से सम्बद्ध है। प्रेमचंद ने उन्नीसवीं शताब्दी के पिछले खेवे के अंग्रेजी उपन्यासकारों के द्वारा विकसित उपन्यास-स्थापत्य को उतना अधिकृत किया था, जितना उनके समकालीन हिन्दी के दूसरे उपन्यासकार नहीं कर पाये थे। उपन्यास में घटनाओं के यौगपदिक संक्रमण (साइमल्टेनियस प्रोग्रेशन) का कौशल आज सफल उपन्यासकार के बायें हाथ का खेल है, किन्तु प्रेमचन्द ने उसे तब सिद्ध कर लिया था, जब न केवल हिन्दी के बल्कि बंगला के उपन्यासकार भी पाठकों से आत्मीयता स्थापित कर कभी उन्हें आगे बढ़ने और कभी पीछे मुड़ने के लिए लाचार करते थे।.... प्रेमचंद को भारतीय जीवन को उसकी समग्रता में चित्रित करना अभीष्ट था और इसके लिए वे प्रचलित स्थापत्य शैलियों के माध्यम से प्रयत्न कर भी चुके थे, किन्तु 'गोदान' के इन पूर्व प्रारूपों की अपूर्णता देखकर, मानो कई बार प्रयोग करने के बाद, वह उसे पा लेते हैं, जिसके लिए वे भटक चुके थे। उनकी यह उपलब्धि 'गोदान' का स्थापत्य है जिसमें एक साथ ही एक-दूसरे से विच्छिन्न लगने वाले ग्राम-भारत और नगर-भारत बलात् ग्रथित भी हो जाते हैं और विकलांग भी नहीं होते।' नलिन विलोचन शर्मा का यह मंतव्य गोपाल राय को अपने मत के प्रतिपादन में अत्यंत अनुकूल प्रतीत होता है। नलिन जी के उपर्युक्त कथन से 'विषय' पहले या 'रूप' के द्वन्द्व में विषय के महत्त्व का प्रतिपादन होता है, साथ ही उपन्यास की संरचना में कथानक की कसौटी की अपर्याप्तता भी घोषित होती है। उपन्यास के वस्तुपरक रूप-तत्त्व का महत्त्व वांछनीय है, क्योंकि इसी के सहारे पाठक या आलोचक रचनाकार के अभिव्यक्त अनुभवों से परिचित होता है। गोर्की ने भी वस्तुपरक यथार्थ पर बल दिया है। उनका कथन है, 'उदीयमान लेखकों को एक बात विशेष रूप से ध्यान में रखनी चाहिये कि विचार नाइट्रोजन की तरह हवा में उत्पन्न नहीं होते। विचार धरती

पर गढ़े तथा बनाये जाते हैं।.....अन्ततः तथ्य, मात्र तथ्य ही सर्वोपरि भावभूमि है।' रामविलास शर्मा ने कहा है कि '......रचना में विषयवस्तु के अभाव में उस पर रचयिता के महान व्यक्तित्व की छाप भी नहीं रहती। इसके विपरीत प्रेमचन्द, लूशुन, गोर्की, शोलोखोव आदि लेखक यथार्थवादी साहित्य की ऐसी विभूतियाँ हैं जिनके व्यक्तित्व का विकास दूर से ही दिखाई देता है।' (समालोचक, फरवरी, 1959, पृ.-82-83) पर उन्होंने यह भी कहा है कि 'साहित्य का विकास दो परस्पर सम्बद्ध स्तरों पर होता है। एक है विश्व-प्रतीति का स्तर, सामाजिक जीवन के हमारे ज्ञान का स्तर और दूसरा है भाव जगत, इन्द्रियबोध, हमारे सौन्दर्यबोध का स्तर। इनमें संतुलन कायम रखना आवश्यक होता है।' (समालोचक, फरवरी, 1959, पृ. 87) निरा तथ्यांकन भी अखबार की खबर के समान है। इतना तय है कि साहित्य, वस्तुगत यथार्थ की यथातथ्य अभिव्यक्ति या सफल अनुकृति न होकर एक विशिष्ट सृजनात्मक प्रक्रिया का फल है।

उपन्यासकारों ने उपन्यास के प्रस्तुतीकरण के लिए जिन प्रविधियों का इस्तेमाल अपने कथ्य और विजन के लिए किया है, उनमें दृश्यात्मक -परिदृश्यात्मक प्रविधि को डॉ० राय ने सबसे प्रमुख एवं सुपरिचित माना है। इस प्रविधि के साथ उन्होंने उस अवलोकन बिन्दु को भी महत्त्वपूर्ण माना है, जहाँ खड़ा होकर भावक अवलोकन करता है। दृश्यात्मक प्रविधि में हम उपन्यास के दो या अधिक पात्रों को संवाद या अन्य कार्य-व्यापार में संलग्न पाते हैं, वहीं परिदृश्यात्मक प्रविधि में पात्रों के दूर-दूर तक फैले जीवन को एक व्यापक भू-दृश्य के रूप में देखते हैं। प्रेमचंद के उपन्यासों में इन दोनों प्रविधियों का प्रयोग हुआ है। परवर्ती उपन्यासों में परिदृश्यात्मक प्रविधि का प्रयोग क्रमशः बढ़ा है। डॉ० राय कहते हैं, ".... प्रेमचंद की उपन्यास-कला, जो उनकी संरचना में भी परिलक्षित होती है, स्थिर या एकरूप नहीं है। उसमें लगातार विकास दिखाई देता है और वह 'सेवासदन' से आरंभ होकर 'गोदान' में पूर्णता पर पहुँचती दिखाई देती है।' 'गोदान' तक पहुँचते-पहुँचते प्रेमचंद वस्तुस्थिति के प्रति तटस्थ दृष्टि रखते हुए चित्रण करने में पूर्णता प्राप्त कर चुके थे। रचना कर्म में जब रचनाकार के द्रष्टापक्ष के साथ स्रष्टा पक्ष का संतुलन स्थापित होता है तब रचना अधिक प्राणवान होती है। हालांकि फ्रांसीसी रचनाकार बाल्जाक के द्रष्टा एवं स्रष्टा पक्ष में कोई मेल नहीं था। वे सामंतवादी रहन-सहन के अभ्यस्त होते हुए भी जीवन के दुखों का वर्णन अपने उपन्यासों में करते थे। फिर भी उनकी रचनाएँ उत्कृष्ट मानी

जाती हैं। गोर्की या प्रेमचन्द के द्रष्टा और स्रष्टा रूप में जो एकात्म था वह बाल्जाक में नहीं था। 'पर गोर्की के 'मदर' एवं प्रेमचंद के 'गोदान' वाली मजबूती बाल्जाक के उत्कृष्ट उपन्यास 'ओल्डमैन द गोरिया' में नहीं है।' बाल्जाक का जीवन उनके उपन्यासों में प्रस्तुत जीवन की परिवृत्ति से नितान्त भिन्न था जबकि गोर्की और प्रेमचन्द के उपन्यासों की परिवृत्ति उनके जीवन में घुली-मिली थी।

गोपाल राय ने प्रेमचंद के उपन्यासों की यथार्थवादी संरचना पर विचार करते हुए प्रेमचंद के दूसरे उपन्यास 'सेवासदन' से शुरुआत की है। उनका मानना है कि 'अपने प्रथम उर्दू उपन्यास 'असरारे मआविद उर्फ देवस्थान रहस्य' में प्रेमचंद ने भाषा का जो ढाँचा अपनाया था वह यथार्थवाद की कसौटी पर खड़ा नहीं उतरता, पर अपने दूसरे ही उपन्यास में उन्होंने उसका त्याग कर दिया था।' 'सेवासदन' में यूरोपीय उपन्यास की यथार्थवादी संरचना को चिह्नित करते हुए भी गोपाल राय का मानना है कि इसमें दृश्य योजना सीमित है। समग्र उपन्यास में प्रेमचंद का हस्तक्षेप सामान्य पाठक भी महसूस करता है। अत: पाठकों का तादात्म्य पात्रों के साथ जिस स्तर का होना चाहिए, नहीं हो पाता है। पाठक कथाकार की उपस्थिति महसूस करता रहता है। ज्योंही किसी पात्र के साथ पाठक का तादात्म्य शुरू होता है कथाकार बीच में उपस्थित हो जाता है। गोपाल राय कहते हैं ''.....प्रेमचंद 'सेवासदन' तक देवकीनन्दन खत्री, अर्थात् किस्सागोई के प्रभाव से मुक्त नहीं हो सके थे। उनकी दृश्य योजना की क्षमता बहुत सीमित थी। पर अपने अगले ही उपन्यास 'प्रेमाश्रम' (1922) में प्रेमचन्द की दृश्य योजना एकाएक बहुत ऊँचाई पर पहुँच जाती है। 'प्रेमाश्रम' का आरंभ ही एक सम्पूर्ण रूप से दृश्यात्मक परिच्छेद से होता है, जो लेखकीय हस्तक्षेप से पूर्णत: मुक्त है। यों इस दृश्य में प्रमुखता संवाद की ही है पर पात्रों की भाव भंगिमाओं और सात्विक भावों के संकेत द्वारा वृश्यात्मक प्रसंगों का अनुपात भी बढ़ता गया है। .....'निर्मला' के बाद के उपन्यासों जैसे 'गबन', 'कर्मभूमि' और 'गोदान' में दृश्यों के बीच कथाकार का हस्तक्षेप निरंतर कम होता गया है और 'गोदान' में वह न के बराबर है। 'गोदान' में अनेक दृश्यों की बहुत प्रभावी निर्मितियाँ हैं और कथाकार उनमें अपने को अप्रत्यक्ष ही रखता है।''

गोपाल राय ने पाठकों के अवलोकन बिन्दुओं पर ध्यान देते हुए पाठकों की मानसिक क्रिया-प्रतिक्रियाओं के अनुमानित मनोविश्लेषणात्मक अध्ययन के आधार पर भी प्रेमचंद के उपन्यासों की संरचनात्मक खूबी एवं

खामियों को उजागर किया है। उपन्यास का कलेवर अपेक्षाकृत दीर्घ होता है। अतः उपन्यास पर विचार करना समयसाध्य एवं श्रमसाध्य होता है। 'उपन्यास की संरचना' पुस्तक से गुजरते हुए स्पष्ट है कि आलोचक ने विवेच्य उपन्यासों का सांगोपांग पाठ किया है। उपन्यास की संरचनाजनित पाश्चात्य अवधारणा का अवगाहन करते हुए हिन्दी उपन्यासों के संदर्भ में तुलनात्मक विवेचन प्रस्तुत किया है।

आलोचक ने कथा-साहित्य की परिदृश्यात्मक प्रविधि को ज्यादा महत्त्वपूर्ण माना है। "...परिदृश्यात्मक प्रविधि कथा कहने का ही एक विकसित ढंग है, जहाँ कथा 'कही' न जाकर 'प्रस्तुत' की जाती है और कथाकार अपने को अप्रत्यक्ष बनाये रखने की भरपूर कोशिश करता है। 'सेवासदन' में प्रेमचंद इस प्रविधि का प्रयोग करते हैं। इसका आरंभ परिदृश्यात्मक प्रविधि के बहुत कुशल प्रयोग से होता है। उपन्यास के प्रथम दो परिच्छेद परिदृश्यात्मक प्रविधि के माध्यम से कथा-प्रस्तुति के अच्छे प्रयास हैं। यहाँ पाठक को किस्सागों की आवाज नहीं सुनायी पड़ती, उसकी आसन्न वर्तमानता का बोध नहीं होता, और कथाकार सर्वज्ञ, उपदेशक, दार्शनिक, मनोविश्लेषक, नीतिकार आदि के रूप में उपस्थित नहीं होता। पर प्रेमचंद पूरे उपन्यास में इस शिल्प का निर्वाह नहीं कर पाते। .....जिसके फलस्वरूप कथा के 'कहने-सुनने' का बोध अधिक होता है, 'प्रस्तुत' किये जाने का कम।" स्वयं प्रेमचंद का मानना है कि 'सफल उपन्यासकार का सबसे बड़ा लक्षण है कि वह अपने पाठकों के हृदय में उन्हीं भावों को जाग्रत कर दे, जो उसके पात्रों में हो। पाठक भूल जाय कि वह कोई उपन्यास पढ़ रहा है- उसके और पात्रों के बीच में आत्मीयता का भाव उत्पन्न हो जाय।' उपन्यासकार के बार-बार उपन्यास में उपस्थित होने से पाठकों का पात्रों के साथ तादात्म्य बोध बाधित होता है। "प्रेमाश्रम', 'रंगभूमि', 'निर्मला' और 'कर्मभूमि' में परिदृश्यात्मक पद्धति से कथा-संसार की प्रस्तुति के बीच प्रेमचंद का किस्सागो जब तब सिर उठाता रहता है। 'सेवासदन' की अपेक्षा 'प्रेमाश्रम' में प्रेमचन्द अधिक अप्रत्यक्ष हैं पर उनके कथाकार ने मौन धारण की कला सीखी नहीं है।'

यह सच है कि कथा-रचना के क्षेत्र में प्रेमचंद अपने पूर्ववर्त्तियों एवं समकालीनों से कई सीढ़ी आगे थे। पर वह युग राष्ट्रवादी एवं सुधारवादी आंदोलनों का युग था। आर्यसमाज द्वारा सामाजिक-धार्मिक सुधार का आंदोलन चल रहा था। गाँधीजी राजनीति के मंच पर उपस्थित थे एवं तमाम

सामाजिक, धार्मिक रूढ़ियों के प्रति संघर्षरत थे। प्रेमचंद इन आंदोलनों के साथ थे। इसलिए वे अपने साहित्य में उपदेशक के मंच से एकाएक उतर नहीं सके। अतः अपने अनुभूत सत्य को तटस्थ भाव से पाठकों के बीच रखने में उन्हें समय लगा, किन्तु धीरे धीरे वहाँ बढ़ रहे थे, जहाँ वह स्वयं उपन्यास में उपस्थित नहीं होकर परिस्थितियों के विश्लेषण द्वारा पाठकों का पात्रों से तदाकार कराते हैं।

'रंगभूमि' में भी उपन्यासकार वर्णनकर्ता और किस्सागो के रूप में पाठकों से सम्पर्क साधता है, 'रंगभूमि' में परिदृश्यात्मक पद्धति से कथा प्रस्तुत करने के क्रम में कथाकार पाठक को मुखर रूप से सम्बोधित नहीं करता। उसकी आसन्न वर्तमानता का बोध तो पाठक को होता है, पर उसकी फुसफुसाहट उसके कानों तक नहीं पहुँचती।' गोपाल राय 'रंगभूमि' के स्थापत्य की चर्चा करते हुए कहते हैं, "'रंगभूमि' में प्रेमचंद विभिन्न अवलोकन बिन्दुओं का बारी-बारी से प्रयोग करने के बदले उनका मिश्रण भी करते हैं। अवलोकन बिन्दु का ऐसा त्वरित स्थानान्तरण अविश्सनीय तो होता ही है, सम्पूर्ण बिम्ब को धूमिल भी बना देता है।"

वर्जिनियाँ वुल्फ के उपन्यास के विषय में एक आलोचक का कहना है कि 'वर्जिनियाँ वुल्फ के पात्रों के संबंध-सूत्र अपने स्रष्टा के साथ स्पष्ट हैं। पात्र उसी की वाणी बोलते हैं, उसी के ढंग पर सोचते हैं। लेखिका के रूप में जहाँ वह अपने उपन्यास में प्रवेश करती है तो अनाधिकार चेष्टा-सी नहीं मालूम पड़ती। वहाँ रहने का उसे अधिकार है। उसके उपन्यास ऐसे हैं जिनमें लेखक भी शामिल रहता है।' (आलोचना वर्ष-3, अंक-2, जनवरी 1954, पृ.-43) उपन्यास की संरचना-विमर्श का यह एक अलग कोण बनता है। पर उपन्यास की संरचना की मजबूती के लिए लेखकीय तटस्थता एवं निर्वैयक्तिक दृष्टि का विकास आवश्यक है।

'कर्मभूमि' में किस्सागो प्रत्यक्ष रूप में उपस्थित नहीं होता पर उनकी उपस्थिति आभासित होती रहती है। 'कर्मभूमि' तक आते-आते उपन्यास की परिदृश्यात्मक प्रविधि का कुशल उपयोग दिखता है पर 'किस्सागोई' की सीमा का अतिक्रमण अभी भी यह प्रविधि नहीं कर पायी। 'निर्मला' में पात्रों एवं पाठकों के बीच तदाकार बढ़ा है, जिससे पात्रों के मनोभावों के प्रत्यक्षीकरण की कला अधिक विकसित रूप में है। 'स्वगतभाषण', 'अन्तरालाप' (इन्टीरियर मोनोलॉग) के अधिक निकट जान पड़ता है। पात्रों के मस्तिष्क में अवलोकन बिन्दु के स्थापन की दृष्टि से 'निर्मला' की तुलना

में 'कर्मभूमि' अपेक्षाकृत कमजोर है। 'प्रविधियों के मिश्रण और अवलोकन बिन्दु के स्थानान्तरण की दृष्टि से 'निर्मला' और 'कर्मभूमि' में कोई उल्लेखनीय वैशिष्ट्य नहीं है। पर 'गोदान' में इनका मिश्रण कलात्मक ढंग से हुआ है, जो शिल्प की दृष्टि से उल्लेखनीय है।' 'गोदान' में प्रेमचंद ने अपने कलात्मक संयम का परिचय दिया है। 'यथार्थवादी कला के अनुरूप उन्होंने अपनी ओर से कोई सम्भाषण यहाँ नहीं दिया है, कोई उद्बोधन नहीं किया है। होरी और उसके परिवार के जीवन-यथार्थ को स्थितियों के बीच से ही उभारा है।' मार्गेट हॉकनेस को एंगेल्स द्वारा लिखे एक पत्र की पंक्तियाँ यहाँ ध्यातव्य हैं-'लेखक के विचारों की अधिकता कला में प्रत्यक्ष न होकर, अप्रकट रहे, शेष बनी रहे तो यह कला-कौशल के लिए बेहतर होता है।'

डॉ० राय ने प्रेमचंद के उपन्यासों में वर्णित दिक्, काल एवं भाषा पर सघन अध्ययनजनित विवेचन प्रस्तुत किया है। उपन्यास की यथार्थवादी संरचना में भाषा के महत्त्व को रेखांकित करते हुए उनका मानना है कि 'औपन्यासिक संरचना को यथार्थवादी स्वर प्रदान करने में भाषा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है। उपन्यास में गद्य लिखे जाने का तर्क भी यही है कि गद्य वास्तविक जीवन में व्यवहार की भाषा है पर उसमें 'यथार्थ का भ्रम' पैदा करने की क्षमता 'कविता की भाषा' या 'पद्य' की तुलना में अधिक होती है।' प्रेमचन्द की अनुभव-समृद्ध भाषा सरल होकर भी सूक्तियों के निकट है। सूक्ति वाक्यों का सीधा संबंध जीवन के यथार्थ से है। प्रेमचन्द अपनी रचनात्मक भाषा के निर्माता स्वयं हैं। उन्होंने साहित्य की आभिजात्य भाषा को जनभाषा के करीब लाकर अपनी रचनात्मक भाषा का निर्माण किया है। प्रेमचंद अपने उपन्यासों में स्थान एवं पात्रों की भिन्नता के अनुसार भाषा का प्रयोग करते हैं। भाषा के प्रयोग में भी यथार्थ पर उनकी नजर टिकी रहती है। नागर जीवन से जुड़ी घटनाओं के वर्णन में संस्कृत, अरबी-फारसी और अंग्रेजी के शब्दों का प्रयोग अधिक रहता है। जबकि ग्रामीण जीवन से जुड़ी घटनाओं में तद्भव शब्दों का प्रयोग अधिक है। वाक्य में शब्दों के क्रम को बदल कर एवं शब्दों के ग्राम्य उच्चारण को प्रयुक्त कर वे यथार्थ का रंग गहरा करते हैं, यथा- 'खायी है कभी उसकी बनायी हुई चीज' (कायाकल्प, 43),'चला है वहाँ से बड़ा भगत की पूँछ बनकर' (कर्मभूमि, पृ.-199), 'ले ले चाहे जहाँ तलासी' (गोदान, पृ.-117) प्रेमचंद के उपन्यासों में वर्णित भाषा की इस भिन्नता और विविधता के मूल में संरचना का यथार्थवादी आग्रह ही है।

उपन्यासों की यथार्थवादी संरचना को स्पष्ट करते हुए गोपाल राय ने प्रेमचन्द के उपन्यासों की संरचना के विभिन्न अवयवों को परत-दर-परत उधेड़ कर देखा है। सहमति-असहमति का उनका विवेक इस पुस्तक में भी स्पष्ट लक्षित है। 'उपन्यास की संरचना' जैसे जटिल विषय को उन्होंने अपनी इस पुस्तक में रोचकता प्रदान करते हुए पाठकों के लिए सहज बोधगम्य बनाया है।

प्रोफेसर एवं अध्यक्ष,
विश्वविद्यालय हिन्दी-विभाग,
बी.आर.ए. बिहार विश्वविद्यालय,
मुजफ्फरपुर

❑